अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

# "इक्कीसवीं सदी के हिन्दी आत्मकथा में दलित समाज : सुशीला टाकभौरे के "शिकंजे का दर्द" के विशेष संदर्भ में"

**अंजू सांगवा**
शोधार्थी (हिन्दी)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**डॉ. मीता शर्मा**
सह–आचार्य (हिन्दी विभाग)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

## सारांश

21वीं सदी के हिंदी आत्मकथात्मक साहित्य ने सामाजिक यथार्थ को नई दृष्टि से सामने लाने का प्रयास किया है। विशेषकर दलित आत्मकथाओं ने जातिगत शोषण, सामाजिक भेदभाव और हाशिए पर खड़े समुदायों के अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉ. सुशीला टाक भौरे की आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" इस परंपरा का महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसमें दलित समाज की पीड़ा, संघर्ष और आत्मसम्मान की खोज को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

इस आत्मकथा में दलित स्त्री के दोहरे शोषण–एक ओर जातिगत और दूसरी ओर लैंगिक–का मार्मिक चित्रण मिलता है। लेखिका ने बाल्यकाल से लेकर उच्च शिक्षा और सामाजिक जीवन तक के अनुभवों में छुआछूत, अपमान, तिरस्कार और संघर्ष को बारीकी से दर्ज किया है। इसमें दलित समाज की सामाजिक–आर्थिक दयनीय स्थिति, शिक्षा प्राप्ति में आने वाली बाधाएँ और समाज की सामंती मानसिकता से टकराने की विवशताएँ स्पष्ट झलकती हैं।

शोध–पत्र के अंतर्गत यह विवेचन किया गया है कि "शिकंजे का दर्द" केवल व्यक्तिगत जीवन का बयान नहीं है, बल्कि संपूर्ण दलित समाज के अनुभवों और दर्द का प्रतिनिधित्व भी करती है। यह कृति सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की लड़ाई का साहित्यिक दस्तावेज बन जाती है। 21वीं सदी के संदर्भ में यह आत्मकथा दलित विमर्श को नई दृष्टि और व्यापक सामाजिक चेतना प्रदान करती है।

**मुख्य शब्दः** हिंदी आत्मकथा, दलित साहित्य, सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, जातिगत शोषण, सामाजिक असमानता, स्त्री विमर्श, आत्मसम्मान, सामाजिक न्याय, दलित चेतना,

## प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जो लेखक के निजी अनुभवों के साथ–साथ समाज के यथार्थ को भी अभिव्यक्ति प्रदान करती है। आत्मकथा मात्र व्यक्तिगत जीवन यात्रा का विवरण नहीं होती, बल्कि वह उस युग और समाज की सच्चाइयों का भी दर्पण होती है, जिसमें लेखक ने जीवन व्यतीत किया हो। विशेषकर 21वीं सदी में आत्मकथा का स्वर और अधिक

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

मुखर हुआ है, जहाँ हाशिए पर खड़े समुदायों ने अपने अनुभवों और संघर्षों को साहित्यिक भाषा दी है। इसी क्रम में दलित आत्मकथा साहित्य का उद्‌भव और विकास हुआ है, जिसने दलित समाज के शोषण, अपमान, पीड़ा और संघर्ष को मुख्यधारा के साहित्य के समक्ष रखा है।

दलित आत्मकथाओं ने हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की है। ये आत्मकथाएँ दलित जीवन की सामाजिक–आर्थिक विषमताओं, जातिगत भेदभाव और संघर्ष की गाथा प्रस्तुत करती हैं। इन कृतियों में दलित अस्मिता की खोज, आत्मसम्मान के लिए संघर्ष और सामाजिक न्याय की आकांक्षा स्पष्ट दिखाई देती है। दलित लेखिकाओं की आत्मकथाओं ने इस विमर्श को और अधिक संवेदनशील बनाया है, क्योंकि उन्होंने जातिगत शोषण के साथ–साथ स्त्री होने के दोहरे दंश को भी दर्ज किया है।

डॉ. सुशीला टाक भौरे की आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" 21वीं सदी के दलित आत्मकथात्मक साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है। इस आत्मकथा में लेखिका ने अपने व्यक्तिगत जीवनानुभवों के माध्यम से दलित समाज की पीड़ा, संघर्ष और शोषण को स्वर दिया है। यह कृति न केवल एक दलित स्त्री की मार्मिक गाथा है, बल्कि पूरे दलित समाज की सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों का सजीव चित्रण भी है। इसमें शिक्षा प्राप्ति की कठिनाइयों, सामाजिक अपमान और असमानताओं का गहन यथार्थ चित्रित हुआ है।

इस शोध–पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि "शिकंजे का दर्द" केवल आत्मकथा भर नहीं है, बल्कि दलित समाज की सामूहिक चेतना और सामाजिक न्याय की आकांक्षा का भी प्रतिनिधित्व करती है। इसके माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि आत्मकथा किस प्रकार दलित समाज के संघर्षों का साहित्यिक दस्तावेज बनती है और 21वीं सदी में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को दिशा देती है।

## दलित आत्मकथा साहित्य : पृष्ठभूमि और विकास

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य एक ऐसा सशक्त विमर्श है जिसने हाशिए पर खड़े समाज के अनुभवों और पीड़ा को स्वर दिया। यह साहित्य उस ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध की भूमिका निभाता है, जिसने दलित समुदाय को सदियों तक शोषण और उपेक्षा का शिकार बनाया। दलित साहित्य का उद्देश्य केवल साहित्यिक सृजन करना नहीं है, बल्कि सामाजिक चेतना को जगाना और समानता की लड़ाई को मजबूत करना भी है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आत्मकथा को एक प्रभावी माध्यम के रूप में अपनाया गया।

## आत्मकथा और दलित साहित्य का संबंध

आत्मकथा दलित साहित्य की सबसे प्रमुख विधा मानी जाती है, क्योंकि इसमें लेखक अपने जीवन के अनुभवों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करता है। यह विधा दलित समाज की उन यथार्थ परिस्थितियों को उजागर करती है, जिन्हें मुख्यधारा का साहित्य अक्सर नजरअंदाज करता रहा है। आत्मकथाओं में जातिगत भेदभाव, शिक्षा से वंचितता, सामाजिक अपमान और आत्मसम्मान की खोज जैसे मुद्दे प्रत्यक्ष रूप से दर्ज होते हैं।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

दलित आत्मकथा लेखन का उद्भव 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मराठी साहित्य से हुआ। बाबूराव बागुल, शरणकुमार लिंबाले, लक्ष्मण माने आदि लेखकों की आत्मकथाओं ने इस परंपरा की शुरुआत की। हिंदी साहित्य ने भी इस परंपरा को आत्मसात किया और यहाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' तथा मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिंजरे' जैसी कृतियों ने दलित आत्मकथा साहित्य की बुनियाद रखी।

21वीं सदी में आते–आते हिंदी में दलित आत्मकथा लेखन का स्वर और अधिक व्यापक और गहन हो गया। इस काल में दलित स्त्रियों की आत्मकथाओं ने विशेष महत्व प्राप्त किया। उन्होंने अपने अनुभवों में न केवल जातिगत शोषण का दर्द दर्ज किया, बल्कि स्त्री होने के नाते झेलनी पड़ी दोहरी यातना को भी उजागर किया। इस संदर्भ में सुशीला टाक भौरे की "शिकंजे का दर्द" विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

दलित आत्मकथाओं का महत्व इसलिए भी है क्योंकि ये साहित्यिक विधा से आगे बढ़कर समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक दस्तावेज का काम करती हैं। ये कृतियाँ यह बताती हैं कि दलित समाज केवल पीड़ित वर्ग नहीं है, बल्कि वह संघर्ष और आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ने वाला जीवट समाज भी है।

इस प्रकार, दलित आत्मकथा साहित्य ने हिंदी साहित्य को नई दृष्टि दी है। यह साहित्य दलित समाज की अस्मिता, संघर्ष और चेतना का जीवंत दर्पण है। 21वीं सदी में यह विधा और अधिक परिपक्व होकर सामने आई है और सुशीला टाक भौरे की "शिकंजे का दर्द" इस परंपरा का महत्वपूर्ण अध्याय है।

## सुशीला टाकभौरे और "शिकंजे का दर्द"

हिंदी दलित आत्मकथा साहित्य में डॉ. सुशीला टाक भौरे का नाम अत्यंत सम्मान और संवेदनशीलता के साथ लिया जाता है। वे न केवल एक लेखिका हैं, बल्कि समाज में व्याप्त असमानताओं और भेदभाव के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करने वाली एक प्रखर सामाजिक चिंतक भी हैं। सुशीला टाक भौरे का जीवन स्वयं उस दलित स्त्री जीवन की कठोर सच्चाइयों का दस्तावेज है, जिसमें जातिगत भेदभाव, आर्थिक संघर्ष और लैंगिक उत्पीड़न की मार्मिक अनुभूतियाँ समाई हुई हैं।

सुशीला टाक भौरे राजस्थान के एक दलित परिवार से आती हैं। बचपन से ही उन्हें छुआछूत, सामाजिक बहिष्कार और उपेक्षा का सामना करना पड़ा। सामाजिक हीनता के बीच शिक्षा प्राप्त करने की उनकी जिजीविषा, आत्मसम्मान की खोज और प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष ने उन्हें साहित्य की ओर उन्मुख किया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने न केवल अध्यापन के क्षेत्र में योगदान दिया, बल्कि दलित समाज के अधिकारों और समानता के लिए भी सक्रिय भूमिका निभाई।

इनकी आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" दलित जीवन के कटु यथार्थ का सजीव दस्तावेज है। यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत जीवनानुभवों का चित्रण नहीं है, बल्कि पूरे दलित समाज की पीड़ा और संघर्ष की सामूहिक व्यथा–कथा भी है। इसमें लेखिका ने बचपन से लेकर शिक्षा, विवाह, सामाजिक जीवन और पेशेवर अनुभवों तक की यात्रा में झेले गए जातिगत अपमान, तिरस्कार और मानसिक–शारीरिक पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

आत्मकथा का शीर्षक "शिकंजे का दर्द" अत्यंत सारगर्भित और प्रतीकात्मक है। 'शिकंजा' यहाँ उस सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है, जिसने सदियों से दलित समाज को बाँधकर रखा है। यह शिकंजा केवल जातिगत उत्पीड़न तक सीमित नहीं, बल्कि इसमें पितृसत्तात्मक सोच, लैंगिक असमानता और आर्थिक शोषण भी शामिल है। इस शिकंजे से निकलने का प्रयास ही लेखिका की संघर्ष गाथा का मूल स्वर है।

यह आत्मकथा 21वीं सदी के दलित विमर्श को नई दृष्टि प्रदान करती है। इसमें स्त्री विमर्श और दलित विमर्श का अंतर्संबंध स्पष्ट दिखाई देता है। सुशीला टाक भौरे की लेखनी में व्यक्तिगत अनुभवों की गहराई के साथ–साथ सामूहिक चेतना का स्वर भी मुखर होता है। उनके शब्द दलित समाज की उस अनकही पीड़ा को स्वर देते हैं, जिसे मुख्यधारा साहित्य लंबे समय तक उपेक्षित करता रहा।

सुशीला टाक भौरे और उनकी आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" हिंदी साहित्य में न केवल एक दलित स्त्री की आत्मकथा है, बल्कि यह संपूर्ण समाज के लिए आत्ममंथन का अवसर भी है। यह कृति यह संदेश देती है कि दलित समाज केवल पीड़ा का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह संघर्ष, आत्मसम्मान और न्याय की निरंतर लड़ाई का भी प्रतीक है।

**"शिकंजे का दर्द" में दलित समाज का चित्रण**

डॉ. सुशीला टाक भौरे की आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" दलित समाज के यथार्थ का एक जीवंत दस्तावेज है। इसमें दलित जीवन की वे गहरी पीड़ाएँ सामने आती हैं जिन्हें मुख्यधारा के साहित्य और समाजशास्त्र ने लंबे समय तक नज़रअंदाज किया। यह आत्मकथा केवल एक व्यक्ति के अनुभवों तक सीमित नहीं है, बल्कि दलित समाज के सामूहिक दर्द, संघर्ष और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी है।

कृति में सबसे मार्मिक चित्रण जातिगत भेदभाव का है। लेखिका बताती हैं कि किस प्रकार बचपन से ही दलित बच्चों को छुआछूत, गाली–गलौज और सामाजिक अपमान झेलना पड़ता है। विद्यालय में बैठने की जगह से लेकर पानी पीने तक की व्यवस्था में जातिगत विभाजन स्पष्ट दिखाई देता है। यह भेदभाव केवल शिक्षा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि विवाह, नौकरी और सामाजिक मेलजोल में भी दलित समाज को अपमानित किया जाता रहा। लेखिका ने शिक्षा प्राप्ति के अनुभवों को विस्तार से दर्ज किया है। शिक्षा को सामाजिक उन्नति का साधन माना जाता है, लेकिन दलित समाज के लिए यह संघर्ष का मार्ग है। आर्थिक तंगी, समाज का विरोध और अपमानजनक व्यवहार शिक्षा प्राप्ति को कठिन बना देते हैं। आत्मकथा में यह स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली दलित स्त्रियों को समाज दोहरी नज़र से देखता है–एक ओर उनकी प्रतिभा को दबाने की कोशिश होती है और दूसरी ओर जातिगत पूर्वाग्रह उन्हें आगे बढ़ने से रोकते हैं।

"शिकंजे का दर्द" का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसमें दलित स्त्री के अनुभवों को केंद्र में रखा गया है। दलित स्त्री को न केवल जातिगत उत्पीड़न झेलना पड़ता है बल्कि पितृसत्तात्मक समाज में उसे लैंगिक शोषण और असमानता का भी सामना करना पड़ता है। लेखिका के अनुभव बताते हैं कि दलित स्त्री को घर, समाज और कार्यस्थल सभी जगह पर असमान व्यवहार का सामना करना पड़ता है। आत्मकथा में दलित समाज की आर्थिक स्थिति का भी सजीव चित्रण है। भूमिहीनता, संसाधनों की कमी और सीमित रोजगार के अवसरों के कारण उनका जीवन गरीबी और वंचना से भरा हुआ है। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि गरीबी केवल आर्थिक स्थिति नहीं,

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

बल्कि सामाजिक तिरस्कार को भी जन्म देती है। हालाँकि आत्मकथा पीड़ा और अपमान का वर्णन करती है, लेकिन इसके साथ ही यह संघर्ष और आत्मसम्मान की खोज की गाथा भी है। लेखिका ने अनेक बाधाओं के बावजूद शिक्षा प्राप्त की, सामाजिक अवरोधों को चुनौती दी और अपने आत्मसम्मान को स्थापित किया। यह कथा दलित समाज के सामूहिक संघर्ष का प्रतीक है, जिसमें समानता और न्याय की आकांक्षा निहित है।

"शिकंजे का दर्द" में दलित समाज का चित्रण केवल शोषण और पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनके संघर्ष, जिजीविषा और आत्मसम्मान की यात्रा का भी सशक्त प्रमाण है। यह आत्मकथा दलित समाज के सामाजिक यथार्थ को साहित्य के केंद्र में लाती है और 21वीं सदी के सामाजिक–सांस्कृतिक विमर्श में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है।

डॉ. सुशीला टाक भौरे की आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" केवल जातिगत शोषण का दस्तावेज भर नहीं है, बल्कि इसमें स्त्री विमर्श और दलित चेतना दोनों का अंतर्संबंध गहराई से उभरकर सामने आता है। लेखिका ने जिस दृष्टि से अपने जीवन के अनुभवों को दर्ज किया है, वह न केवल दलित समाज की पीड़ा को उद्घाटित करता है बल्कि दलित स्त्री की विशिष्ट स्थिति को भी साहित्यिक स्वर प्रदान करता है।

**आत्मकथा में स्त्री विमर्श और दलित चेतना**

आत्मकथा में बार–बार यह दिखाई देता है कि दलित स्त्री को दोहरे शिकंजे का सामना करना पड़ता है। एक ओर जातिगत अपमान और सामाजिक तिरस्कार, दूसरी ओर स्त्री होने के कारण परिवार और समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था का बोझ। लेखिका ने बाल्यकाल से लेकर विवाह और सामाजिक जीवन तक के अनेक प्रसंगों में यह स्पष्ट किया है कि दलित स्त्री को शिक्षा, स्वतंत्रता और सम्मान पाने के लिए दोगुना संघर्ष करना पड़ता है। कृति में स्त्री विमर्श का सबसे सशक्त पक्ष आत्मसम्मान और अस्मिता की खोज है। लेखिका बताती हैं कि किस प्रकार शिक्षा ने उन्हें आत्मविश्वास दिया और जीवन की कठिन परिस्थितियों में आत्मसम्मान को बचाए रखने की शक्ति प्रदान की। यह संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि दलित स्त्रियों के सामूहिक संघर्ष का प्रतीक है।

"शिकंजे का दर्द" यह स्पष्ट करती है कि स्त्री विमर्श और दलित विमर्श अलग–अलग न होकर परस्पर जुड़े हुए विमर्श हैं। दलित स्त्री के अनुभव मुख्यधारा की स्त्रियों से भिन्न हैं, क्योंकि उसे जातिगत और लैंगिक–दोनों स्तरों पर शोषण का सामना करना पड़ता है। यह आत्मकथा इन दोनों विमर्शों को एक साझा मंच पर लाती है और सामाजिक न्याय की व्यापक आवश्यकता को रेखांकित करती है। इस आत्मकथा में दलित चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। लेखिका ने अपने अनुभवों के माध्यम से यह संदेश दिया है कि दलित समाज को सामाजिक न्याय और समानता का अधिकार मिलना चाहिए। शिक्षा, आत्मसम्मान और संघर्ष के माध्यम से दलित चेतना का विकास होता है, जो समाज में परिवर्तन और सुधार की दिशा निर्धारित करता है।

"शिकंजे का दर्द" में स्त्री विमर्श और दलित चेतना का समन्वय एक अद्वितीय साहित्यिक उपलब्धि है। यह आत्मकथा बताती है कि दलित स्त्री केवल पीड़ित या शोषित नहीं है, बल्कि वह संघर्षशील, आत्मसम्मान की खोज करने वाली और सामाजिक परिवर्तन की वाहक भी है। इस प्रकार यह कृति 21वीं सदी में दलित साहित्य को नई दिशा और गहन सामाजिक चेतना प्रदान करती है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

## 21वीं सदी में दलित आत्मकथाओं का महत्व

21वीं सदी का हिंदी साहित्य सामाजिक असमानताओं और हाशिए पर खड़े समुदायों के जीवन अनुभवों को गहराई से सामने लाने के लिए जाना जाता है। इस दौर में दलित आत्मकथाओं का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि ये कृतियाँ दलित समाज के संघर्ष, चेतना और अस्मिता को प्रत्यक्ष रूप से दर्ज करती हैं। आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन को ही नहीं, बल्कि उस समाज की सामूहिक पीड़ा को भी साहित्यिक भाषा देता है जिससे वह जुड़ा हुआ है।

21वीं सदी की दलित आत्मकथाएँ दलित समाज की वास्तविकताओं का जीवंत दस्तावेज हैं। ये केवल साहित्यिक रचनाएँ नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाण भी हैं। इनसे यह पता चलता है कि किस प्रकार दलित समाज आज भी जातिगत पूर्वाग्रह, भेदभाव और असमानता से जूझ रहा है। इन आत्मकथाओं का सबसे बड़ा महत्व यह है कि वे समाज में चेतना जगाने का कार्य करती हैं। जब दलित लेखक और विशेषकर दलित स्त्रियाँ अपनी पीड़ा और संघर्ष को लिखती हैं, तो वह केवल अपनी कथा नहीं रहती बल्कि समाज के लिए आईना बन जाती है। इससे अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होती है और सामाजिक परिवर्तन की राह प्रशस्त होती है।

21वीं सदी की आत्मकथाएँ दलित विमर्श को नई दृष्टि प्रदान करती हैं। ये केवल जातिगत शोषण का बयान नहीं करतीं, बल्कि शिक्षा, रोजगार, राजनीति और सांस्कृतिक जीवन में दलितों की भागीदारी और आकांक्षाओं को भी सामने लाती हैं। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श का अंतर्संबंध भी इन्हीं आत्मकथाओं में प्रकट होता है, जहाँ दलित स्त्री का संघर्ष विशिष्ट महत्व ग्रहण करता है। इन आत्मकथाओं ने हिंदी साहित्य की संवेदनात्मक और वैचारिक क्षितिज का विस्तार किया है। इनसे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य केवल कल्पना या भावुकता का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज की वास्तविकता को दर्ज करने और परिवर्तन की प्रेरणा देने का साधन भी है।

इस प्रकार, 21वीं सदी में दलित आत्मकथाओं का महत्व केवल साहित्यिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और वैचारिक भी है। ये आत्मकथाएँ हाशिए के समाज को स्वर देती हैं, उनके संघर्ष को दस्तावेज़ बनाती हैं और समानता, न्याय तथा मानवीय गरिमा की दिशा में नए रास्ते खोलती हैं। डॉ. सुशीला टाक भौरे की "शिकंजे का दर्द" जैसी कृतियाँ इस महत्व की सर्वोत्तम मिसाल हैं।

## निष्कर्ष

डॉ. सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" 21वीं सदी के हिंदी दलित साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह कृति केवल व्यक्तिगत जीवनानुभवों का बयान नहीं है, बल्कि दलित समाज के सामूहिक अनुभवों, संघर्षों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें जातिगत भेदभाव, सामाजिक तिरस्कार, आर्थिक वंचना और लैंगिक असमानताओं की पीड़ा का गहन चित्रण मिलता है।

इस आत्मकथा का विशेष महत्व यह है कि इसमें दलित स्त्री की स्थिति को केंद्र में रखा गया है। दलित स्त्री को दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है—एक ओर जातिगत भेदभाव और दूसरी ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था। लेखिका ने अपने अनुभवों में यह स्पष्ट किया है

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

कि दलित स्त्री के संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं होते, बल्कि पूरे समाज की चेतना और आत्मसम्मान की खोज का प्रतीक होते हैं।

21वीं सदी के संदर्भ में "शिकंजे का दर्द" दलित आत्मकथाओं की उस परंपरा को आगे बढ़ाती है, जिसने साहित्य को समाज के लिए एक आईना और परिवर्तन का माध्यम बनाया। यह आत्मकथा दर्शाती है कि शिक्षा, आत्मविश्वास और संघर्ष के बल पर दलित समाज अपने अस्तित्व को न केवल स्थापित कर सकता है, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान भी दे सकता है।

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि "शिकंजे का दर्द" हिंदी आत्मकथा साहित्य में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श दोनों का सशक्त संगम है। यह कृति दलित समाज की पीड़ा का दस्तावेज होने के साथ–साथ उसके आत्मसम्मान और अस्मिता की गाथा भी है। इस प्रकार, यह आत्मकथा न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

## संदर्भ

1. भौरे, सुशीला टाक. शिकंजे का दर्द. नई दिल्लीरू सामयिक प्रकाशन, 2011.
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1997.
3. नैमिशराय, मोहनदास. अपने–अपने पिंजरे. दिल्ली : संवाद प्रकाशन, 2003.
4. लिंबाले, शरणकुमार. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. अनुवाद : मोहनदास नैमिशराय. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2007.
5. सिंह, जितेंद्र. हिंदी में दलित आत्मकथा. वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ, 2014.
7. गौतम, धर्मवीर. दलित साहित्य और सामाजिक चेतना. जयपुर : साहित्य भंडार, 2010.
8. शर्मा, संजय. "हिंदी आत्मकथा साहित्य और दलित विमर्श." साहित्य विमर्श, खंड 18, अंक 2, 2020, पृ. 45–57.
9. यादव, अंजना. "दलित स्त्री आत्मकथाओं में अस्मिता का प्रश्न." भारतीय साहित्य समीक्षा, खंड 12, अंक 3, 2021, पृ. 82–96.
10. बंसल, अरविंद. "21वीं सदी का दलित साहित्य और आत्मकथा लेखन." समकालीन साहित्य, खंड 9, अंक 1, 2022, पृ. 33–48.
11. तिवारी, ममता. "दलित विमर्श में स्त्री अनुभवों की आवाज़." स्त्री अध्ययन पत्रिका, खंड 7, अंक 4, 2020, पृ. 59–71.
12. "Dalit Autobiographies in Hindi Literature" EPW Online Archive. 2021.
13. "Shikanje Ka Dard: Contextualising Dalit Women's Autobiographies." ResearchGate Papers. 2022.